बदलते मौसमों के अनुरूप कृषि नीतियां

सुलोचना गाडगिल और पी.आर. शेषगिरि राव

पिछले पचास सालों में भारत के खाद्यान्न उत्पादन में तेज़ी से हुई बढ़ोत्तरी का ताल्लुक छठे दशक में शुरू हुई हरित क्रान्ति से है। यह बढ़ोत्तरी मुख्यतः उन सिंचित क्षेत्रों में हुई है जहां नए तरह की बौनी, उर्वरक पर आधारित किस्में उगाई गईं। देश को खाद्यान्न की कमी की दिशा से उबारकर लगभग आत्मनिर्भरता की दशा में पहुंचाने का श्रेय इस बढ़ोत्तरी को दिया जा सकता है। इस अवधि के दौरान जनसंख्या में हुई तीव्र वृद्धि के बावजूद खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कोई अन्तर नहीं आ सका। हालांकि पिछले दस सालों में हरित क्रांति में आई शिथिलता से खाद्यान्न के उत्पादन में भी वैश्विक और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर गिरावट आई है। इसीलिए अनाज की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के उचित स्तर को सुनिश्चित करने के लिहाज़ से यह अनिवार्य हो गया है कि वर्षा सिंचित इलाकों में उत्पादन को बढ़ाया जाए।

खाद्यान्न के उत्पादन पर मौसम (खासकर मानसूनी बारिश) के परिवर्तन का असर लगातार पड़ा है। इसीलिए कम वर्षा वाले सालों में उत्पादन बहुत कम हो सका। हरित क्रांति के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था 'मानसून का जुआ' ही बनी रही। सिंचित क्षेत्रों के उत्पादन में तो तेज़ी से बढ़ोत्तरी होती रही लेकिन उसी दौरान वर्षा पर निर्भर उन क्षेत्रों का विकास धीमा ही रहा जिन पर देश के कुल अनाज उत्पादन का आधे से ज़्यादा हिस्सा टिका हुआ है। नतीजतन वर्षा-सिंचित फसलों (दालों) की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में काफी कमी आ गई है। वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों की पैदावार को बढ़ाने के लिए खेती के ऐसे तरीकों की खोज ज़रूरी हो गई है जिनके सहारे (मौसम में आने वाले उतार-चढ़ाव के बावजूद) इन क्षेत्रों में उत्पादन की दर को बढ़ाया और कायम रखा जा सके।

हरित क्रांति में कृषि-विज्ञान, खासकर जिनेटिक्स के क्षेत्र में हुए विकास की खासी भूमिका रही। उच्च पैदावार वाली किस्मों के चुनाव और उस पर उर्वरकों और कीटनाशकों के समुचित उपयोग वाला 'ग्रीन रिवॉल्यूशन पैकेज' कृषि वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं और क्रियान्वयन-केन्द्रों पर तैयार किया गया था। यह जानकारी का सफलता पूर्वक 'प्रयोगशाला से खेत तक' पहुंचने का नतीजा ही था कि शुरू के बीसेक सालों में पैदावार में खासी बढ़ोत्तरी हुई।

दूसरी तरफ वर्षा-सिंचित क्षेत्र में पचासेक सालों के शोध और विकास सम्बंधी प्रयत्नों के बावजूद पैदावार धीमे-धीमे ही बढ़ पाई। अनुसंधान केन्द्रों की पैदावार और किसानों के खेतों की पैदावार के बीच का फासला बढ़ता चला गया (देखें चित्र 1)। स्वामीनाथन के अनुसार - *आम तौर पर अनुसंधान केन्द्रों के कार्यक्रम किसानों की बजाय वैज्ञानिकों की ओर उन्मुख रहे हैं। ये कार्यक्रम वैज्ञानिकों द्वारा ही विचारित, नियोजित व क्रियान्वित होते हैं; वही उनकी देखरेख करते हैं और वही मूल्यांकन। नतीजे ऊपर से नीचे की ओर भेजे जाते हैं। किसान इसमें एक निष्क्रिय भागीदार भर होते है। ज़मीन के छोटे टुकड़ों और अल्पावधि खोजों से उपजी इन वैज्ञानिक उपलब्धियों (या तथाकथित तकनीकों) का कोई ताल्लुक लागत और लाभ के ज़रूरी हिसाब से नहीं होता।*

बारिश की कमी के सालों में भी किसान यथासम्भव ठीक नतीजे लाते रहे हैं (देखें चित्र 1)। दूसरी तरफ,

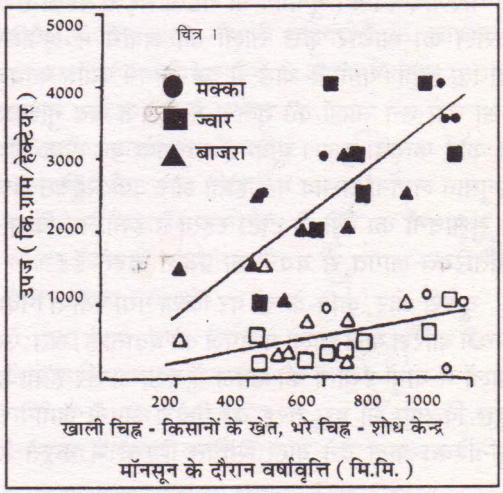

आम तौर पर अनुसंधान केन्द्रों के कार्यक्रम किसानों की बजाय वैज्ञानिकों की ओर उन्मुख रहे हैं। ये कार्यक्रम वैज्ञानिकों द्वारा ही विचारित, नियोजित व क्रियान्वित होते हैं; वही उनकी देखरेख करते हैं और वही मूल्यांकन। नतीजे ऊपर से नीचे की ओर भेजे जाते हैं। किसान इसमें एक निष्क्रिय भागीदार भर होते है। ज़मीन के छोटे टुकड़ों और अल्पावधि खोजों से उपजी इन वैज्ञानिक उपलब्धियों (या तथाकथित तकनीकों) का कोई ताल्लुक लागत और लाभ के ज़रूरी हिसाब से नहीं होता।

अधिक बारिश के बावजूद उपज उससे कम रही जितनी कि उपलब्ध जानकारी के चलते होनी चाहिए थी। कृषि केन्द्रों के प्रबंधात्मक प्रयोगों और किसानों के खेतों के बीच सबसे बड़ा फर्क उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग के स्तर में है। ध्यान देने की बात यह है कि वर्षा निर्भर क्षेत्रों में उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के फायदे हर बरस एक से नहीं होते। इनका फायदा अच्छी बारिश वाले साल में ही मिल पाता है। कम वर्षा वाले सालों में इनके उपयोग के बावजूद फसल कम होती है। इसीलिए ऐसे वर्षों में ही खेत की फसल की तुलना कृषि-केन्द्रों से की जा सकती है।

चूंकि वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उपज कम होने की सम्भावना अधिक होती है और साल दर साल वह घटती-बढ़ती रहती है इसीलिए निश्चित उपज देने वाले सिंचित क्षेत्रों के मुकाबले इन किसानों के पास साधनों की कमी होती है। प्रस्तावित उपायों को अपनाने न अपनाने का उनका फैसला इस पर निर्भर करता है कि उनसे होने वाला फायदा उन पर आने वाली लागत के अनुपात में है या नहीं। अगर विभिन्न वर्षों में उपज के घटने बढ़ने के परिणाम स्वरूप मुनाफा भी घटता बढ़ता रहता है तो फैसले का आधार कुछ सालों की अवधि में अपेक्षित फायदा होगा। यानी वे थोड़े से वर्ष जिनमें पर्याप्त फायदा हुआ उसे उन सालों की तुलना में देखना जब मुश्किल से कोई फायदा हुआ। चूंकि इस मुनाफे का ठीक-ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं होता और वर्षा सिंचित क्षेत्रों में संसाधनों का वैसे ही टोटा रहता है इसीलिए किसान अतिरिक्त लागत से बचने का प्रयत्न करते हैं।

दूसरी ओर, कृषि-केन्द्रों पर किया गया पर्याप्त निवेश अच्छी बारिश वाले सालों में उपज को बढ़ाता है, अतः ऐसे सालों में दोनों स्थानों की उपज में बड़ा अन्तर होता है। कुछ किसान भी इस तरह का निवेश अपनी ज़मीन के सुनिश्चित फल देने वाले सिंचित हिस्सों में करते हैं। इसीलिए यह मानना होगा कि उपज के बीच अन्तर का कारण 'क्या करना है' की जानकारी की कमी न होकर बदलते मौसम के हिसाब से अपेक्षित मुनाफे का अनुमान न लगा पाना है।

वर्षा सिंचित क्षेत्र के लिए और भी बहुत सी सिफारिशें की गई हैं। जैसे बुआई के समय की बारिश में देर होने की सूरत में वैकल्पिक फसल की बुआई या पानी/मिट्टी का संरक्षण या सिंचाई की आपूर्ति के लिए कृषि भूमि में तालाबों का निर्माण आदि। उदाहरण के लिए कर्नाटक का पवागडा क्षेत्र लेते हैं जहां यूं तो मुख्य फसल मूंगफली है लेकिन बुआई की बारिश में देरी होने पर बतौर विकल्प सोयाबीन अथवा कुलथी बोने की सलाह दी गई है। यह बात अलग है कि किसानों ने तब भी मूंगफली बोना ही जारी रखा, शायद इसीलिए भी कि सोयाबीन और कुलथी के लिए बाज़ार उपलब्ध नहीं है। जलाशय बनाने या पानी/मिट्टी के संरक्षण के सुझाव में भी किसानों की अरुचि बनी रहती है क्योंकि इन पर आने वाला खर्च मुनाफे की तुलना में कम ही होता है। कृषि केन्द्रों की हिदायदों के हुए इस हश्र ने ऐसी नीतियां बनाने की ज़रूरत को उजागर किया जिनकी किसानों द्वारा अपनाए जाने की सम्भावना ज़्यादा हो।

ज़ाहिर है किसानों को मान्य तरीकों के लिए अपेक्षित मुनाफे का ऐसा आकलन ज़रूरी है जो किसी क्षेत्र विशेष की किसी फसल विशेष पर पड़ने वाले वर्षा के बदलावों को ध्यान में रखकर किया गया हो। यह भी जांचना ज़रूरी है कि प्रबंध सम्बंधी विभिन्न उपायों को अपनाने पर बारिश के परिवर्तनों के हिसाब से उपज की घट-बढ़ कितनी रहती है। अच्छे और बुरे, दोनों किस्म के मानसून वाले वर्षों में और एक ही मौसम के भीतर वर्षा की क्या प्रकृति रही है, इसे पिछले बीस वर्षों में अच्छी तरह से समझा गया है। देशव्यापी सधन नेटवर्क के पिछले एक सौ वर्षों के मौसम में बदलावों सम्बंधी आंकड़ों के आधार

कृषि केन्द्र पर किए गए सैद्धान्तिक अध्ययनों और प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों द्वारा तैयार की गई सिफारिशों के पुलिन्दे की बजाय एक ऐसी पद्धति का विकास किया जाना चाहिए जो निर्णय लेते समय किसान की मदद कर सके। ऐसे तंत्र को किसानों का सहायक बनाना चाहिए ताकि वे सोच समझ कर फसलों, कीटों, रोगों वगैरह के अलावा मौसमी वर्षावृत्ति और अंतर-मौसमी परिवर्तनों को ध्यान में रखकर उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से अपना विकल्प चुन सकें।

पर जलवायु परिवर्तनों के महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में जानकारी हासिल की जा सकती है। मौसमी और उप मौसमी (एक मौसम के भीतर) पैमानों पर वर्षा सम्बंधी पूर्वानुमान करने की हमारे दक्षता बढ़ी है। कृषि हेतु पूर्वानुमानों के लिए नेशनल सेण्टर फॉर मीडियम रेंज वैदर प्रिडिक्शन की स्थापना की जा चुकी है। वनस्पति अनुवांशिकी के साथ-साथ फसलों की मॉडलिंग जैसा कृषि विज्ञान विकसित हो चुका है। इस तरह एक क्षेत्र में फसल विशेष पर जलवायु परिवर्तन का उपज पर पड़ने वाले असर के आकलन हेतु हमारे पास काफी साधन हैं।

जलवायु में परिवर्तनशीलता का उपज पर असर समझने के लिए ज़रूरी है कि मौसम सम्बंधी आंकड़ों के आधार पर वर्षा की परिवर्तनशीलता की प्रकृति का विश्लेषण किया जाए। और फसलों की मॉडलिंग से तैयार की गई फसल पर इस परिवर्तनशील के असर को जांचा जाए। इसके लिए ऐसे फसल-मॉडल तैयार करने होंगे जो वर्षा में होने वाले परिवर्तनों के कारण उपज में हो रहे बदलावों के अनुरूप ढल सकें। ऐसे मॉडल से प्रत्येक प्रबंधकीय विकल्प के लिए उस क्षेत्र के विभिन्न वर्षा पैटर्न से जुड़ी फसल की उपज का आकलन किया जा सकता है। इससे जो आंकड़े हासिल होंगे उन्हें पूर्व के आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त प्रत्येक वर्षा के पैटर्न की अपेक्षित आवृत्ति से जोड़कर आने वाले कई वर्षों की फसल का आकलन कर सकते हैं। अपेक्षित उपज के यही आकलन अन्ततः उन उपायों की खोज में मददगार हो सकते हैं जो किसी क्षेत्र विशेष के वर्षा सम्बंधी परिवर्तनों से फसल की संगति बिठाने में उपयोगी हो सकें।

अगर किसी खास वर्ष के लिए मौसम सम्बंधी पूर्वानुमान मौसमी पैमाने पर (जैसे मौसमी वर्षा और उसका वितरण) या उपमौसमी पैमाने पर (एक मौसम में कुछ दिनों का बारिश/सूखा होना) उपलब्ध हों तो ऐसे पूर्वानुमानों के लिए अनुकूल उपाय तलाशे जा सकते हैं। यद्यपि ऐसे उपायों को तभी अपनाया जा सकता है जब इन पूर्वानुमानों के खरे उतरने की सम्भावना उन उपायों को अपनाने पर आने वाली लागत और उनके लाभ के बीच के अनुपात से अधिक हो।

यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि अनुकूलतम उपायों को किसानों के पास उपलब्ध विकल्पों से ही तलाशा जाएगा। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी है नीति निर्माण के दौरान बाज़ार की उपलब्धता, ढुलाई पर आने वाले खर्च आदि का ध्यान रखा जाना। कुल मिलाकर इन उपायों का किसान केन्द्रित होना और पूर्व में अपनाए जा रहे 'प्रयोगशाला से खेत तक' के दृष्टिकोण से काफी अलग होना ज़रूरी है। खेती की परिस्थितियों (यानी पानी को थामे रखने की मिट्टी की क्षमता, उपलब्ध संसाधन आदि) तथा वातावरण के सम्भावित परिवर्तनों को ध्यान में रखकर खोजे गए उपाय ही अनुकूल होंगे। कृषि केन्द्र पर किए गए सैद्धान्तिक अध्ययनों और प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों द्वारा तैयार की गई सिफारिशों के पुलिन्दे की बजाय एक ऐसी पद्धति का विकास किया जाना चाहिए जो निर्णय लेते समय किसान की मदद कर सके। ऐसे तंत्र को किसानों का सहायक बनाना चाहिए ताकि वे सोच समझ कर फसलों, कीटों, रोगों वगैरह के अलावा मौसमी वर्षावृत्ति और अंतर-मौसमी परिवर्तनों के आधार पर उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से अपना विकल्प चुन सकें। इसके लिए एक ऐसा दृष्टिकोण आवश्यक है जो जलवायु और कृषि विज्ञान के विशेषज्ञों तथा किसानों के सक्रिय आपसी सहयोग से तैयार किया गया हो।

चित्र 2: भारत के मूंगफली उत्पादक क्षेत्र

यहां हम वर्षा सिंचित क्षेत्रों के लिए जलवायु सम्बंधी परिवर्तनों पर आधारित उपयुक्त योजनाएं बनाने का

एक दृष्टिकोण पेश कर रहे हैं। इसमें भारतीय उपमहाद्वीप के एक अर्धबंजर इलाके अनन्तपुर क्षेत्र (चित्र 2) में वर्षा सिंचित मूंगफली के उत्पादन पर बात की जाएगी। समस्या है TMV-2 नामक मूंगफली की किस्म के लिए बुआई का सबसे अनुकूल अवसर क्या है?

किसानों का मत और खेती के उपाय

वर्षा-सिंचित क्षेत्र में कृषि उत्पादन का एक विशिष्ट गुण इन क्षेत्रों में एक से दूसरे साल बारिश की मात्रा में होने वाले हेरफेर के अनुसार उपज की मात्रा में होने वाला परिवर्तन है (चित्र-3)। किसी-किसी साल तो उत्पादन इतना कम (500 किलोग्राम/हेक्टेयर से भी कमी) होता है कि बुआई-जुताई वगैरह पर आने वाली लागत भी वसूल नहीं हो पाती है। छोटे और सीमान्त किसानों पर इसका बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ता है। बड़ी ज़मीन और उच्च स्तरीय संसाधनों वाले किसान तो इस तरह की मुसीबतों से 1-2 साल तक निबट सकते हैं। शर्त यह है कि वे अन्य सालों में पर्याप्त मुनाफा कमा लें।

चित्र 3: 1970-95 में अनन्तपुर ज़िले की औसत उपज

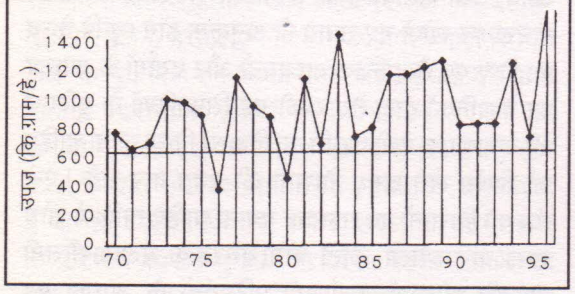

ऐसे किसानों का लक्ष्य कुछ सालों में मुनाफे को अधिकतम करना होता है है तो सीमान्त किसान फसल की बर्बादी के खतरे को न्यूनतम रखने में जुटे रहते हैं। यानी अपने-अपने विशिष्ट लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए उपलब्ध विकल्प और उपयुक्त उपाय भी सामाजिक-आर्थिक कारकों पर ही निर्भर करते हैं। ऐसे में निर्णय में सहायक तंत्र के निर्माण हेतु किसानों का इनपुट और भागीदारी केन्द्रीय होनी चाहिए।

हमने अनन्तपुर क्षेत्र में किसानों का एक तंत्र खड़ा किया। हमारा अध्ययन क्षेत्र लगभग 77 डिग्री पूर्व, 14 डिग्री उत्तर में 4500 वर्ग किलोमीटर तक फैला था। यहां से हमने 25 अलग-अलग जगहों के किसानों को शामिल किया। इनके अलावा एक ही जगह के (क्योंकि अन्य क्षेत्रों के ऐसे कृषक हमारे साथ समय लगाने को राज़ी न थे) 12 सीमान्त किसानों को शामिल किया। यूं इस इलाके में ज़्यादातर सीमान्त और छोटे किसान ही हैं जिनके पास क्रमशः 2 हेक्टेयर से कम और 2-12 हेक्टेयर के बीच ज़मीन होती है।

1998 के खरीफ के मौसम के आंकड़े एकत्र किए गए। इनमें मौसम सम्बंधी महत्वपूर्ण बदलावों, मिट्टी की नमी और पौधों के उगने, बढ़ने, फलने आदि से सम्बंधित आंकड़े शामिल थे। किसानों से बातचीत करके और उनकी सामूहिक चर्चाएं आयोजित कर खेती की परिस्थितियों, तरीकों आदि पर बातचीत की गई। इस तरह की जानकारी फसलों के पैटर्न बाबत निर्णय लेने, प्रत्येक पायदान पर किसानों को उपलब्ध प्रबंधकीय विकल्प जानने, खेती से जुड़ी लागतों, लाभों का किसान द्वारा किया आकलन और प्रत्येक स्तर पर ज़रूरी मौसमी जानकारियां/पूर्वानुमान जानने हेतु इकट्ठा की गई।

खेत के स्तर पर लिए गए ज़्यादातर निर्णय अपेक्षित मुनाफों बाबत किसानों के अनुमान पर आधारित होते हैं। और ये अनुमान उत्पादन तथा बाज़ार मूल्य के निर्भर करते हैं। बाज़ार भाव में होने वाले बदलाव और इससे मुनाफे में होने वाली घट-बढ़ कृषि के तरीकों में पर्याप्त बदलाव ला सकती है। अनन्तपुर के किसानों ने 1970 में मूंगफली उगाना इसीलिए शुरू किया था। उत्पादन, कीमत और मुनाफे में हर साल बदलाव आते रहते हैं। कीमतें किसी क्षेत्र विशेष की पैदावार मात्र पर निर्भर नहीं करती बल्कि दूसरे क्षेत्रों की उसी फसल की पैदावार तथा उसी ज़रूरत को पूरा करने वाली दूसरी फसल की पैदावार और सरकार की आयात-निर्यात नीति पर भी निर्भर करती है। लेकिन यहां हमारा लक्ष्य कीमतें न होकर उत्पादन की वृद्धि और उपज के जोखिम को घटाना है।

भूमि की जुताई, बीज और उसकी किस्म के चुनाव, उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग, बुआई के उचित अवसर आदि के बारे में किसानों को निर्णय लेने पड़ते हैं। इनमें से कई पहलुओं पर कृषि विशेषज्ञों ने भी उपाय सुझाए हैं। इनमें से कई उपाय अतिरिक्त खर्च की मांग करते हैं (देखें तालिका-1)। देखा गया है कि अतिरिक्त लागत न्यूनतम लाभ से ज़्यादा होती है (बीज-उपचार के

तालिका 1. खेत के स्तर पर निर्णय

	निवेश सम्बंधी निर्णय	निर्णय का समय	लाभ की निर्भरता	लाभ की सीमा	प्रति वर्ष लागत
मिट्टी और पानी का प्रबंधन	भूमि सुधार, मसलन खेत के अहाते में खाद का प्रयोग 12टन/हे. चार वर्ष में एक बार	भूमि की जुताई के पहले	चार वर्षों की अपेक्षित फसल; फसल के साथ बढ़ता हुआ लाभ	10-45	20
	उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि NPK की प्रस्तावित मात्रा में 25:50:25	बुआई के दो दिन पहले	अपेक्षित फसल, फसल के साथ बढ़ता हुआ लाभ	10-40	17
पौधे के संरक्षण के उपाय	बीजोपचार, फफूंदनाशक 5ग्राम/कि.ग्राम	बुआई के पहले	बीज के क्षय, इस तरह की घटनाओं की सघनता के साथ लाभ में वृद्धि	10-20	2
	बाद के समय में पत्तियों पर आने वाले दागों पर फफूंदनाशक का छिड़काव	घटना के सात दिन बाद	(1) घटना की गम्भीरता (2) अपेक्षित फसल, दोनों के साथ बढ़ता हुआ लाभ	10-50	10-19

निर्णय के सिवा)। ध्यान देने की बात है कि भूमि सुधार लागू करने का फायदा लगातार चार सालों की फसल पर निर्भर है। तो इस तरह के निर्णय के लिए ज़रूरी इनपुट एक या कई एक सालों की अपेक्षित उपज है अपेक्षित लाभों का आकलन करने के लिए क्षेत्र की वर्षावृत्ति में बदलाव के चलते होने वाली विभिन्न स्तर की उपज की सम्भाविता का विश्लेषण ज़रूरी है।

हमने विभिन्न निर्णयों के लिए ज़रूरी मौसम सम्बंधी पूर्वानुमानों बाबत जानकारियां भी इकट्ठी कीं। मसलन, कटाई के समय सूखे/गीले दौर का पूर्वानुमान कटाई का समय तय करने में मदद कर सकता है। इसी तरह अगर मौसमी बारिश और उसके बंटवारे के पूर्वानुमान के आधार पर उपज का पूर्वानुमान किया जा सके तो उर्वरकों आदि के उपयोग से हो सकने वाले फायदों का आकलन किया जा सकता है।

अगर बुआई का अवसर चुनने जैसे कुछ फैसले अतिरिक्त लागत की मांग नहीं भी करते हैं तब भी अगर ये गलत साबित हुए तो गम्भीर नुकसान पहुंचा सकते हैं। मई, जून या जुलाई में जल्दी से जल्दी मूंगफली की बुआई करने के विशेषज्ञों के सुझाव के बावजूद किसान अक्सर अगस्त में भी मूंगफली बो देते हैं तो इसका कारण उनका यह पिछला अनुभव है कि कभी-कभी देर से की गई बोनी के बावजूद अच्छी फसल हो जाती है। इन सारी बातों से ज़ाहिर है कि सही रास्ता आख्तियार करने के लिए वर्षा के परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में हर स्तर पर किसानों के पिछले अनुभवों को लेखे में लिया जाए।

वर्षा सिंचित उत्पादन में बढ़ोत्तरी

अर्धशुष्क क्षेत्र में सैकड़ों वर्ष से खेती की जा रही है। इसलिए किसानों को यहां की मुश्किल जलवायु और उसके साथ निर्वाह करने का खासा अनुभव है। खेती के परम्परागत तरीके लगातार परीक्षण की प्रक्रिया से गुज़र कर ही परिवर्तनशील वातावरण के साथ अपनी पटरी बिठा सके हैं। फिर भी वर्षा पोषित क्षेत्र के बड़े हिस्से की आज की खेती का रूप उसके परम्परागत रूप से काफी अलग है। अनन्तपुर क्षेत्र को ही लें, जहां आज TMV-2 नामक मूंगफली की गैर परम्परागत किस्म ने वहां की परम्परागत फसल की जगह ले ली है। अनन्तपुर अब प्रायद्वीप के मूंगफली उगाने वाले इलाके का केन्द्र है (चित्र-2)। जहां परम्परागत अनाज (मसलन महाराष्ट्र और कर्नाटक के कुछ हिस्सों में ज्वार) उगाए भी जा रहे हैं वहां 70 के दशक में प्रविष्ट हुईं उनकी नई किस्में चलन

किसान नक्षत्रों के माध्यम से समय की गणना करते थे जो सौर्य कैलण्डर पर आधारित 13 या 14 दिनों की अवधि है। ये नक्षत्र वे 27 तारामण्डल हैं जिनसे होकर सूर्य पूरे वर्ष में गुज़रता है। प्रत्येक नक्षत्र की अवधि लगभग 14 दिनों की होती है। खेती के लिए सही अवसर का चुनाव भी समय के इसी पैमाने के आधार पर होता था। इसीलिए पूरी एक शताब्दी के आंकड़ों के विश्लेषण से हासिल की गई वर्षा के बदलावों की जानकारी को किसानों से बांटना तभी प्रभावशाली है जब इस जानाकारी का सन्दर्भ नक्षत्र हों।

में हैं। इस तरह वर्षा के परिवर्तनों की अच्छी खासी पारम्परिक जानकारी के बावजूद अनाज की विशिष्ट किस्मों पर पड़ने वाले विस्तृत प्रभाव लोगों को ज्ञात नहीं हैं। ऐसा इसलिए कि इनके बारे में 20 सालों का अनुभव काफी नहीं है। इसलिए परम्परागत ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के साथ जोड़ना ज़रूरी है ताकि बारिश में होने वाले बदलावों और वर्तमान में उगाई जा रही फसलों/किस्मों के आपसी रिश्ते सम्बंधी कोई समझ बन सके।

बारिश के बदलाव और मूंगफली उत्पादकों के लिए पूर्वानुमान

अनन्तपुर क्षेत्र की वर्षा के परिवर्तनों की प्रकृति को चित्र-4 से समझा जा सकता है। सालाना बारिश में 20 सें.मी. से 100 सें.मी. के बीच एक अच्छा खासा बदलाव है। साथ ही, मूंगफली उगाने के मौसम (जुलाई-दिसम्बर) के दौरान होने वाली बारिश का परिमाण 10 सें.मी. और 80 सें.मी. के बीच झूलता रहता है। ज़्यादा ज़रूरी बात तो यह कि एक मौसम के भीतर भी वितरण का पैटर्न एक से दूसरे साल में काफी बदल जाता है। यहां शताब्दियों से होती आ रही वर्षा-पोषित खेती के कारण वर्षा के पैटर्न में आने वाले बदलावों की अच्छी खासी परम्परागत जानकारी मौजूद है। किसान नक्षत्रों के माध्यम से समय की गणना करते थे जो सौर्य कैलण्डर पर आधारित 13 या 14 दिनों की अवधि हैं। ये नक्षत्र वे 27 तारामण्डल हैं जिनसे होकर सूर्य पूरे वर्ष में गुज़रता है। प्रत्येक नक्षत्र की अवधि लगभग 14 दिनों की होती है। खेती के लिए सही अवसर का चुनाव भी समय के इसी पैमाने के आधार पर होता था। इसीलिए पूरी एक शताब्दी के आंकड़ों के विश्लेषण से हासिल की गई वर्षा के बदलावों की जानकारी को किसानों से बांटना तभी प्रभावशाली है जब इस जानाकारी का सन्दर्भ नक्षत्र हों। किसानों के साथ हमारे संवाद पर इस 'जोड़ने वाली भाषा' का अच्छा असर हुआ।

हमने देखा कि वर्षा का मौसम भले ही मई से नवम्बर तक फैला होता है किन्तु 1 सें.मी. या उससे अधिक वर्षा की 75 प्रतिशत सम्भावना उत्तरा और हस्त नक्षत्रों में होती है। यहां कहावत प्रचलित है कि अगर उत्तरा में बारिश न हो तो उस क्षेत्र को छोड़ देने का समय आ गया समझो। इसी तरह किसी नक्षत्र में बिल्कुल भी वर्षा न होने की सम्भावना मौसम के पहले हिस्से से लगाकर उत्तरा नक्षत्र तक 50 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक घट जाती है... आदि आदि। खेती के तरीकों को इसी परिवर्तन के हिसाब से बरतना ज़रूरी है।

चित्र 4 : अनन्तपुर में वर्षावृत्ति

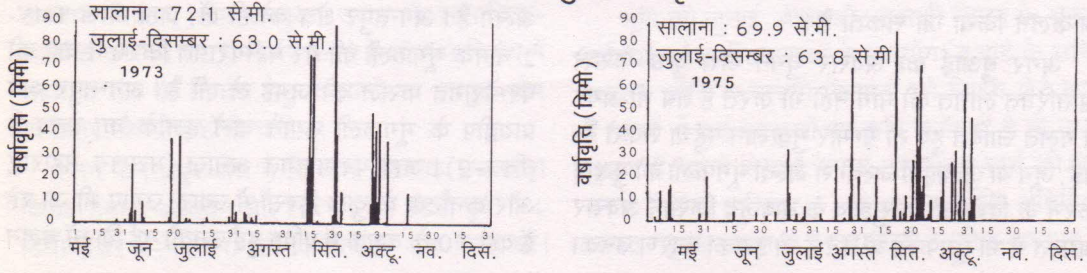

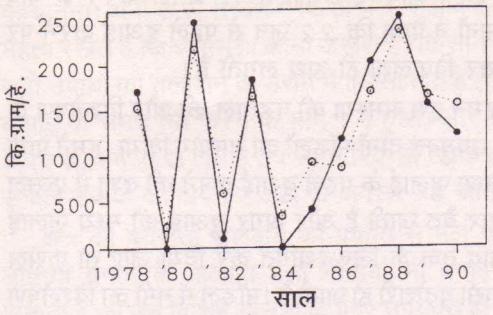

चित्र 5 : अनन्तपुर कृषि केन्द्र में 1979-90 के दौरान प्रदर्शित (खाली गोलों वाली) और PNUTGRO उपज (भरे गोले)

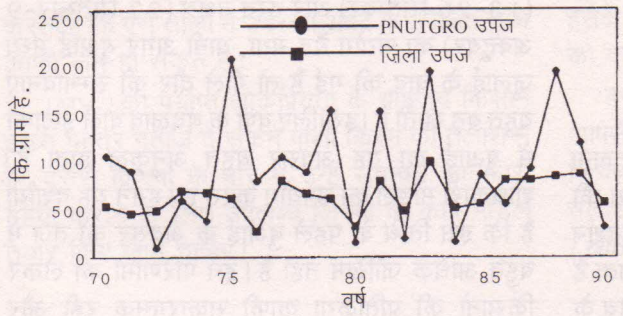

चित्र 6 : अनन्तपुर में 1979-90 के दौरान प्रदर्शित औसत ज़िला उपज और PNUTGRO उपज (ऊपर); PNUTGRO उपज बनाम प्रदर्शित ज़िला उपज (नीचे)

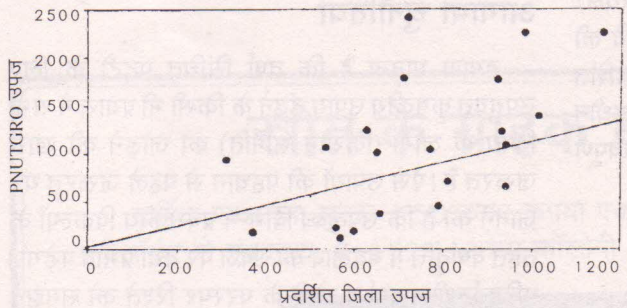

जलवायु सम्बंधी परिवर्तन का मॉडल

फसल पर पड़ने वाले जलवायु सम्बंधी परिवर्तन को साफ तौर पर दर्शा सकने वाला मॉडल उपयोगी हो सकता है। ऐसे मॉडल को विभिन्न खेती सम्बंधी परिस्थितियों (जैसे अलग-अलग तरह की मिट्टी) में, उपलब्ध विभिन्न प्रबंधकीय विकल्पों में (जैसे कीटनाशकों का छिड़काव किया जाए या नहीं) और उपलब्ध विभिन्न फसल की किस्मों में उपज को बरकरार रखने वाला होना चाहिए। यहां हम बदलते मौसम के असर को लेकर एक ऐसे मॉडल की चर्चा करेंगे, जिसका वृद्धि और उन्नति पर प्रत्यक्ष असर भी दिखेगा और अप्रत्यक्ष भी (विशिष्ट प्रकार की मिट्टी और विशिष्ट किस्म हेतु कीटों/रोगों के प्रकोप के ज़रिए।

मूंगफली की वृद्धि, उन्नति और उपज का PNUTGRO नामक यह मॉडल अनन्तपुर के कृषि केन्द्र पर TMV-2 नामक मूंगफली की किस्म के लिए उपयोग में लाया गया। इसमें वर्षावृत्ति में बदलाव के कारण साल दर साल उपज में होने वाले उतार-चढ़ाव को भी दर्शाया गया देखा है (चित्र 5)। फिर भी इस मॉडल में प्रदर्शित फसल और ज़िले की औसत फसल के बीच सामान्यतः खासा अन्तर है (चित्र 6)। कुल मिलाकर यह मॉडल फसल का वास्तविकता से अधिक आकलन करता है क्योंकि वह कीटों के प्रकोप और बीमारियों से होने वाले उन नुकसानों को शामिल नहीं करता जिससे खेत बड़े पैमाने पर त्रस्त रहते हैं।

PNUTGRO जैसे फसलों के मॉडल विकिरण, वर्षावृत्ति आदि जैसे महत्वपूर्ण मौसमी तत्वों के बदलावों का वृद्धि, उन्नति और इस तरह फसल की उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष प्रभावों का अनुरूपण करते हैं। इसके अलावा जलवायु में बदलाव से कीटों व रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है जिससे फसल की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है

यहां हम एक ऐसे शोधकारी मॉडल की चर्चा करेंगे जो जुताई, बोनी आदि के समय और कीटों व बीमारियों की सक्रियता का अनुरूपण पेश करता है। जुताई और बुआई का समय मिट्टी की 20 सें.मी. की ऊपरी सतह की नमी पर निर्भर करता है। मॉडल में नमी को ही कसौटी के बतौर दर्शाया गया है। किसान बुआई के कुल समय के भीतर पहला अवसर हाथ लगते ही बुआई करते हैं। कीटों का हमला सूखे दौर में होता है, जबकि पत्तियों और बीज सम्बंधी बीमारियां गीले दौर में होती हैं। उपलब्ध जानकारी के आधार पर कीटों/रोगों को उकसाने वाले कारकों को

पौधे के विभिन्न ऋतु जैविक अवस्थाओं में मिट्टी की नमी या वर्षा के सन्दर्भ में निर्दिष्ट किया गया है। इनसे होने वाले फसल के नुकसान का अनुमान भी हमने उपलब्ध जानकारी के ही आधार पर किया है। इस प्रकार किसी भी मौसम में मिट्टी की नमी के हिसाब से बुआई की तिथि तथा कीटों/बीमारियों के हमले और फसल पर उनके असर को ज्ञात किया जा सकता है।

1970-90 के इस शोधकारी मॉडल के नतीजे बुआई की तिथि और पत्तियों पर हुए कीटों/बीमारियों के हमले की घटनाओं के नतीजों से मेल खाते थे। यह मॉडल उन तमाम 80 वर्षों के साथ संगत पाया गया जिनके वर्षा तथा कीटों/बीमारियों सम्बंधी आंकड़े अनन्तपुर के मौसम विज्ञान केन्द्र पर उपलब्ध हैं।

जलवायु सम्बंधी बदलावों के सम्पूर्ण प्रभाव का आकलन

इस शोधकारी मॉडल में प्रदर्शित फसल की तुलना PNUTGRO फसल तथा ज़िले की लक्षित फसल से की गई और पाया गया कि मॉडलों के द्वारा किया प्रदर्शन लक्षित फसल के करीब है। इससे यह संकेत मिलता है कि PNUTGRO फसल और ज़िले की फसल के बीच के फर्क के लिए वे कीट/बीमारियां ज़िम्मेदार थीं जिन्हें शोध कारी मॉडल में शामिल किया गया था।

ऐसे मॉडल जो जलवायु सम्बंधी परिवर्तनों के प्रत्यक्ष/परोक्ष प्रभाव को शामिल करते हैं और बुआई आदि की तिथियों के साथ फसल के उतार-चढ़ाव को प्रदर्शित करते हैं वे कृषि व्यवस्था के विभिन्न विकल्पों के अधीन वास्तविक उपज के उतार-चढ़ाव को जांचने के महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं।

वर्षा के परिवर्तनों के अनुकूल उपाय - बुआई का सही समय

आजकल बुआई का सही समय 22 जून से 17 अगस्त के बीच, मिट्टी की ऊपर सतह को पर्याप्त नम पाते ही माना जाता है। परम्परागत खेती में यह अवसर मई या जून में तलाशा जाता था। कृषि वैज्ञानिकों का सुझाव है कि TMV-2 की बुआई मई, जून या जुलाई में पहला मौका मिलते ही कर देनी चाहिए और अगर जुलाई तक भी ऐसा अवसर हाथ नहीं लगता है तो यह फसल बोई ही न जाए। इन सुझावों पर अमल करने के बाद किसानों ने पाया कि 22 जून से पहले बुआई करने पर अक्सर विफलता ही हाथ लगती है।

हमने इस समस्या की पड़ताल की और विश्लेषण के लिए उपयुक्त दोनों मॉडलों का उपयोग किया। हमने पाया कि मध्य जुलाई के पहले बुआई करने की दशा में फसल अक्सर बैठ जाती है और अगर बुआई को मध्य जुलाई के बाद तक के लिए स्थगित कर दिया जाए तो फसल में खासी बढ़ोत्तरी हो जाती है। मॉडल में नमी का विश्लेषण दर्शाता है कि बोनी के बाद 60 से 75 दिनों की अवधि सबसे ज़्यादा जोखिम भरी होती है। यह फली के आने की अवस्था होती है। इस अवस्था में यदि उत्तरा नक्षत्र (13-26 सितम्बर) और हस्त नक्षत्र (27 सितम्बर-9 अक्टूबर) का संयोग बैठ गया, यानी अगर बुआई मध्य जुलाई के बाद की गई है तो गीले दौर की सम्भावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं। इसीलिए वर्षा के बदलाव वाले इलाकों में बुआई का यह अवसर बहुत अनुकूल होता है। शोधकारी मॉडल का उपयोग करते हुए हमने यह दर्शाया है कि इस तिथि के पहले बुआई के अवसर को तज में बहुत अधिक जोखिम नहीं है। इन परिणामों को लेकर किसानों की प्रतिक्रिया काफी सकारात्मक रही और उन्होंने इन नतीजों को जांचने हेतु खेतों में इसका सफल प्रयोग भी किया।

आगामी चुनौतियां

हमारा मानना है कि वर्षा सिंचित पट्टी के लिए उपयुक्त कृषकीय उपाय ढूंढने के किसी भी प्रयास में सभी विषय के लोगों (किसान समिति) को जोड़ने की खास ज़रूरत है। ऐसे उपायों की पहचान से पहले ज़रूरत यह जानने की है कि उपलब्ध विभिन्न प्रबंधकीय विकल्पों के तहत वर्षावृत्ति में बदलाव का उपज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। परिवर्तनशील वर्षा व खेती के परस्पर रिश्ते को समझने के लिए कृषि केन्द्रों पर किए जाने वाले अध्ययनों को (1) कई दशकों के मौसम सम्बंधी आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात जलवायु परिवर्तन की प्रकृति से और (2) कृषि के वास्तविक मॉडलों द्वारा प्रदर्शित फसल पर इन बदलावों के असर की जांच-परख से जोड़ना ज़रूरी है।

व्यवस्था और वातावरण (जैसे विभिन्न प्रबंधकीय विकल्पों की पहचान, बदलती बरसात के हिसाब से

फसलों का मॉडल तैयार करना, कुछ अन्य समस्याएं पहचानना) दोनों के ही सन्दर्भ में किसानों के सुझाव काफी महत्व रखते हैं जिन्हें समझा जाना ज़रूरी है। किसान जब सही उपायों को तलाशने के उद्यम में हिस्सा लेते हैं (जैसा बुआई के समय तय करने के मामले में हुआ) और उन्हें अपने खेतों में परख लेते हैं तब स्वाभाविक ही उनके द्वारा सफल उपायों को अपनाए जाने के अवसर बढ़ जाते हैं।

क्षेत्र की बदलती जलवायु की प्रकृति से मेल खाती नीतियां बनाने के अलावा ऐसी नीतियां भी बनाई जा सकती हैं जो उन विशिष्ट मौसमों के लिए उपयुक्त हों जब मौसमी या अंतर-मौसमी पूर्वानुमान नदारद हों। जैसे अनंतपुर क्षेत्र में एलनीनों के चलते उच्च मौसमी बरसात की संभाविता काफी कम हो गई थी। यह इस ओर इशारा करता है कि ऐसे सालों में उर्वरकों आदि के उपेक्षित लाभ काफी कम हो सकते हैं।

TMV-2 की पर्याप्त लोकप्रियता के बावजूद किसान इससे बेहतर नतीजे दे सकने वाली किस्म की तलाश में हैं। दूसरी किस्मों के बारे में उन्हें समुचित जानकारी मुहैया कराने के लिए उपलब्ध किस्मों के कृषि मॉडल तैयार किए जाने चाहिए।

यह पता लगाया जाना भी उपयोगी होगा कि मूंगफली के अलावा तुअर (जो कि शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है) जैसी दूसरी चीज़ों की खेती भी लाभप्रद स्तर पर की जा सकती है। मूंगफली की मौजूदा किस्म की खेती में मई-जून की बारिश का उपयोग नहीं हो पाता है। इसका पता लगाया जाना चाहिए कि क्या इस वर्षा का उपयोग किसी वैकल्पिक खेती या चारे के लिए किया जा सकता है!

अगर मूंगफली की कीमतों में भारी गिरावट आ जाए (जो कि भूमण्डलीकरण और आयात नीति में उदारता आदि के चलते यूं भी सम्भव है) तो देश की ज़रूरतों को पूरा करने की दृष्टि से ऐसे क्षेत्रों में दलहन आदि जैसे महत्वपूर्ण खाद्यान्नों का उगाया जाना अच्छा होगा। लेकिन इसके लिए इन फसलों पर वातावरण परिवर्तन के असर को दर्शा सकने वाले मॉडलों का होना ज़रूरी है।

हमें विश्वास है कृषि-विशेषज्ञों तथा किसानों के आपसी सहयोग से हमने यहां जो दृष्टिकोण विकसित किया है वह वर्षा पोषित क्षेत्र में खेती के ऐसे ही तरीके तलाशने में मददगार होगा जो किसानों को मान्य हों। *(स्रोत फीचर्स)*

सुलोचना गाडगिल व शेषगिरि सेंटर फॉर एट्मॉस्फरिक एण्ड ओशनिक साइंसेज़, बैंगलोर में काम करते हैं। अनुवाद मदन सोनी ने किया है जो भारत भवन में कार्यरत हैं और साहित्यिक पत्रिका पूर्वग्रह के सम्पादक हैं।

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता शुल्क 150 रुपए कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से **एकलव्य**, ई–1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 के पते पर भेजें

संस्थागत ग्राहकों के लिए खुशखबरी

माह अप्रैल से व्यक्तियों व संस्थाओं के लिए वार्षिक चंदा एक समान (150 रुपए) कर दिया गया है। जिन संस्थाओं ने 250 रुपए चंदा भेजा था उनकी सदस्यता 6 माह के लिए बढ़ा दी जाएगी।